<u>उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय नैनीताल,</u>

<u>आदेश सं. 225/2021 मेजर।</u>

(सेवानिवृत्त) निधि सिंह.......... अपीलार्थी।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री सी0एस0 रावत और श्री योगेश चंद्र तिवारी।

बनाम

श्री अनिमेष सिंह और अन्य........ उत्तरदाता।

उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सनप्रीत सिंह अजमानी,

<u>सुनवाई की तिथिः 17.12.2021,29.06.2022 और 01.07.2022</u>

<u>निर्णय की तिथिः 24.09.2022</u>

<u>श्री संजय कुमार मिश्रा, जे.</u>

1. वादी/अपीलार्थी जो एक सेवानिवृत्त सैन्य कर्मी है, ने सिविल जज(सीनियर डिवीजन) हल्द्वानी जिला नैनीताल के द्वारा मूल वाद सं0 08/2021 में पारित आदेश दिनांक 13.09.2021 को अपील में अपवादित किया है जिसके द्वारा उसका प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 39 नियम 1 व 2 तथा धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद जिसे संक्षिप्त में ''संहिता'' कहा गया है) खारिज कर दिया गया है। वादी/अपीलार्थी, उत्तरदाता–प्रतिवादी सं0 1 और 3 भाई–बहन हैं और वे स्वर्गीय श्री हुकुम सिंह के एकमात्र जीवित विधिक उत्तराधिकारी हैं। श्री हुकुम सिंह ने एक सम्पत्ति खाता नं. 00693 के प्लॉट नं. में 691 मध्ये रकबा 0. 1080 हेक्टेयर, प्लॉट नं. 692 ए मध्ये रकबा 0.3490 हेक्टेयर, प्लॉट नं 693 जी मध्ये 0.1580 हेक्टेयर, कुल 0.6150 हेक्टेयर भूमि सम्पत्ति के पूर्व स्वामी श्री रामनाथ सती से पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 11.01.1984 के निष्पादन पर क्रय किया। उन्हें वर्ष 2009 में इसका कब्जा सौंप दिया गया था। अपीलार्थी/वादी के पिता ने वादी/अपीलार्थी को 3850 वर्ग मीटर भूखण्ड पंजीकृत दान विलेख के माध्यम से प्लाट नं0 691 मध्ये उपहार में दिया। यह अपीलार्थी/वादी के पिता की स्व–अर्जित संपत्ति थी। दिनांक 05.01.2017 को, अपीलार्थी के पिता श्री हुकुम सिंह की मृत्यु वादी/अपीलार्थी और प्रतिवादी संख्या 1 व 3 को पीछे छोड़ते हुए निर्वसीयत हो गई। तथापि, अपीलार्थी/वादी का मामला यह है कि उसके पिता की मृत्यु के बाद प्रतिवादी–प्रत्यर्थी नं. 1. ने अभिलेखों में हेरफेर करके दिनांक 12.09.2017 को अत्यांतिक रूप से राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करा दिया। इसके बाद, उसने दिनांक 03.11.2018

और 29.12.2018 के उपहार विलेखों के माध्यम से अपनी पत्नी के पक्ष में भूमि हस्तांतरित कर दी। जब उपरोक्त तथ्य वादी/अपीलार्थी के संज्ञान में आया, तो उसने जिला मजिस्ट्रेट, आयुक्त, कुमाऊं मंडल, नैनीताल और अन्य उपयुक्त मंचों के समक्ष भी इसकी शिकायतें दर्ज करायी।

दिनांक 05.03.2014 की अधिसूचना के आधार पर, उत्तराखंड सरकार ने जहां पर सम्पत्ति स्थित थी उस क्षेत्र को हल्द्वानी–काठगोदाम नगर पालिका की स्थानीय सीमाओं के भीतर घोषित किया था। वादी/अपीलार्थी का आगे यह कथन है कि नगर निगम की स्थानीय सीमाओं के भीतर क्षेत्र के समावेशन के आधार पर, उत्तराखंड जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षिप्तता के लिए इसके बाद ''यूजेडएएलआर, अधिनियम'' के रूप में संदर्भित) के प्रावधान ऐसी भूमि पर विशेष रूप से उत्तराधिकार के संबंध में लागू नहीं होंगे। वादी/अपीलार्थी का यह भी कहना है कि वर्ष 2005 में संशोधित हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 मामले में लागू होगा और वादी/अपीलार्थी को संपत्ति पर अधिकार है।

वादी/अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी सं0 2, जो प्रत्यर्थी सं. 1 की पत्नी है, ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ अनुबंध किया है, जिसने वाणिज्यिक उपयोग के लिए उक्त संपत्ति पर निर्माण शुरू कर दिया है। यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी नं 2 ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ अनुबंध किया है जिसमें ठेकेदार ने विभिन्न संभावित खरीदारों को बेचने के उद्देश्य से संपत्ति पर फ्लैट बनाने पर सहमति व्यक्त की है। इस प्रकार, ऐसे अभिवचनों पर, वादी/अपीलार्थी ने निम्नलिखित अनुतोषों के लिए याचना की है।

ए. कि घोषणा की डिक्री वादी के पक्ष में और प्रतिवादी नं 1 और 2 के विरुद्ध दिनांक 03.11.2018 द्वारा निष्पादित उपहार विलेख जो बही नं. 1, जिल्द नं. 1661, पृष्ठ 193 से 208, कमांक 8179, और उपहार विलेख दिनांक 29.12. 2018 जो बही नं. 1, जिल्द नं. 1697, पृष्ठ 191 से 208, कमांक 9135, को वादी के हिस्से की सीमा तक शून्य घोषित करें।

बी. कि घोषणा की डिक्री वादी के पक्ष में और प्रतिवादी नं 1 और 2 के विरुद्ध वाद पत्र के पैरा संख्या 2 में वर्णित संपत्ति में 1/3 भाग तक वादी को अन्य प्रतिवादियों के साथ सह–स्वामी के रूप में घोषित करके पारित की जाए।

सी. कि स्थायी निषेधात्मक निषेधाज्ञा की डिक्री वादी के पक्ष में और प्रतिवादी नं 1 और 2 के विरुद्ध वादग्रस्त सम्पत्ति को अंतरण प्रकृति में परिवर्तन और तृतीय पक्ष का हित सृजित करने से रोकने हेतु प्रतिवादी नं. 1 और 2 को निषेधित करने बाबत पारित की जाए।

2. उपर्युक्त अनुतोषों के लिए वाद संस्थित करने के अलावा, वादी/अपीलार्थी ने

अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक आवेदन पत्र भी दायर किया था। यह भी कहा गया है कि पहली बार नोटिस जारी करते समय, विद्वान सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग), हल्द्वानी ने पक्षों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए एक आदेश दिया था, लेकिन बाद में, आवेदन की अंतिम सुनवाई पर, उन्होंने अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए आवेदन को खारिज कर दिया। प्रतिवादी/उत्तरदाता 1 और 2 ने अपना लिखित कथन यह कहते हुए प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी/वादी अपने पिता स्वर्गीय श्री हुकुम सिंह की संपत्ति में कोई हिस्सा रखने का हकदार नहीं है, क्योंकि संपत्ति का उत्तराधिकार यूजेडएएलआर अधिनियम की धारा 171 के प्रावधानों द्वारा निर्देशित किया जाएगा, प्रतिवादी नं 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी कहा गया है कि हिंदू पुरुष की विवाहित पुत्री द्वारा संपत्ति की विरासत, जिसकी निर्वसीयत मृत्यु हो गई हो और जिसने अपने पीछे एक पुत्र को छोडा हो, अनुज्ञेय नहीं है।

3. प्रतिवादीगण/उत्तरदाता 1 और 2 का भी यह मामला है कि स्वर्गीय श्री हुकुम सिंह ने पहले ही वादी/अपीलार्थी के पक्ष में अपने द्वारा खरीदी गई संपत्ति का एक हिस्सा उपहार में दे दिया है, इसलिए, वह विरासत के रूप में किसी अन्य संपत्ति की हकदार नहीं है, जो हल्द्वानी में स्थित है।

4. प्रतिवादीगण/ उत्तरदाता 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह कहा है कि पक्षकारों के बीच एक पारिवारिक समझौता था। यह भी कहा गया है कि वादी/अपीलार्थी ने एस. एच. ओ., पुलिस स्टेशन काठगोदाम के समक्ष इस आशय का एक शपथपत्र दायर किया था कि वादी/अपीलार्थी संपत्ति पर किसी भी अधिकार का दावा नहीं करेगा। प्रतिवादीगण/ उत्तरदाता 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह कहा है कि वादी/अपीलार्थी स्वच्छ हाथों से न्यायालय में नहीं आई है और उसने तात्विक तथ्यों को छुपाया है। इसलिए, अस्थायी निषेधाज्ञा का अनुतोष दिया जाना अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए।

5. अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि विद्वान सिविल न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन), हल्द्वानी आवेदन का विनिश्चय करते समय इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रश्नगत भूमि हल्द्वानी–काठगोदाम नगर निगम की नगरपालिका सीमाओं के भीतर नहीं आती है, इसलिए, उजालआर अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे।

6. हालाँकि, वादी/अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संपत्ति हल्द्वानी–काठगोदाम नगर पालिका के अधिकार क्षेत्र में आती है, क्योंकि डेवलपर ने निर्माण करने के लिए नगर निगम के अधिकारियों से अनुमति ली है।

7. संहिता की धारा 151 सपठित आदेश 13 नियम 1 और 2 के तहत अस्थायी निषेधाज्ञा के अनुदान के लिए आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को निम्नलिखित तीन सिद्धांतों पर विचार करना होगाः

i. क्या वादी के पक्ष में प्रथम दृष्टया कोई मामला है?

ii. क्या अस्थायी निषेधाज्ञा का आदेश जारी करने के लिए सुविधा का संतुलन वादी के पक्ष में है?

iii. यदि निषेधाज्ञा नहीं दी जाती है तो क्या वादी को अपूरणीय हानि उठानी पड़ेगी जिसकी भरपाई हर्जाने या मौद्रिक अधिनिर्णय के रूप में नहीं की जा सकती है?

8. यह भी एक सामान्य विधि है कि संपत्ति के स्वामित्व के मुद्दे को प्रभावी ढंग से तय करने के लिए, न्यायालय संपत्ति की प्रकृति और चरित्र को संरक्षित करेगा, ताकि यह वाद के उचित निर्णय में कोई बाधा पैदा न करे। ऐसे मामलों में, न्यायालय को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देना चाहिए।

9. अब, पहले विचार बिन्दु कि क्या वादी/अपीलार्थी के पक्ष में कोई प्रथम दृष्टया मामला है या नहीं, पर आते है, इस संबंध में इस न्यायालय की राय है कि विद्वान सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग), हल्द्वानी द्वारा किये गये सम्प्रेक्षण गलत हैं, जैसा कि अभिलेखों से प्रदर्शित होता है कि प्रश्नगत भूमि, हल्द्वानी–काठगोदाम के नगर निगम की स्थानीय सीमाओं के भीतर है और अब, इस स्तर पर जो प्रश्न तय किया जाना बाकी है, वह यह है कि क्या संपत्ति सभी तीनों विधिक उत्तराधिकारियों स्वर्गीय श्री हुकुम सिंह के पुत्र और पुत्रियाँ को हस्तांतरित की जाएगी या केवल प्रत्यर्थी नं. 1 स्वर्गीय श्री हुकुम सिंह के पुत्र होने के नाते, उजालार अधिनियम की धारा 171 के अनुसार पूरी तरह से संपत्ति के उत्तराधिकारी होंगे। उजालआर की धारा 171 उत्तराधिकार के सामान्य क्रम का प्रावधान करती है। उप–धारा (2) इस मामले के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक है, जो दिनांक 01.05.2021 को उत्तराखंड संशोधन सं. 14 का 2021 द्वारा संशोधित किया गया था। इससे पूर्व यह उत्तराखंड संशोधन अधिनियम सं. 2005 का 25 दिनांकित 28.10.2005. के द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। इस प्रकार, दिनांक 28.10.2005 और 01.05.2021 के बीच, अधिनियम की धारा (7) की उप धारा (2) में निम्नलिखित प्रावधान करती थी।

"(2) पुरुष भूमिधर या आसामी के निम्नलिखित रिश्तेदार उप–धारा (1) के प्रावधानों के अधीन उत्तराधिकारी माने गये हैं, अर्थात्–

(ए) विधवा और पुंजातीय वंशज प्रतिशाखा के अनुसार।

परंतु यह कि पूर्व मृत पुत्र की विधवा और पुत्र को, चाहे जितनी भी नीची

पीढी में हो, प्रति शाखा के अनुसार वह अंश उत्तराधिकार में मिलेगा जो पूर्व मृत पुत्र को यदि वह जीवित होता तो मिलता;

(बी) माता और पिता

(सी) अविवाहित पुत्री;

(डी) विवाहित पुत्री

(ई) भाई और अविवाहित बहिन, जो क्रमशः उसी पिता का पुत्र और पुत्री हो, जिसका कि मृत था और पूर्व मृत भाई का पुत्र पूर्व भाई उसी पिता का पुत्र हो, जिसका कि मृतक था;

(एफ) पुत्र की पुत्री

(जी) पिता की माता और पिता के पिता

(एच) पुत्री का पुत्र

(आई) विवाहित बहन

(जे) सौतेली बहन जो उसी पिता की पुत्री हो जिसका की मृतक था।

(के) बहन का पुत्र

(एल) सौतेली बहन का पुत्र जो उसी पिता की पुत्री हो जिसका की मृतक था।

(एम) भाई के पुत्र का पुत्र।

(एन) माता की माता का पुत्र

(ओ) पिता के पिता के पुत्र का पुत्र

10. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि जब विधवा और पुरुष वंशज मृत हिंदू पुरुष के उत्तरजीवी रहते हैं, जिनके पास भूमि पर संपत्ति का अधिकार होता है, तो वे अन्य कानूनी उत्तराधिकारियों पर प्रति शाखा उत्तराधिकार प्राप्त करेंगे, लेकिन आगे यह उपबंध किया गया है कि विधवा और पूर्व–मृत पुत्र का पुत्र भी संपत्ति का हकदार होगा। उत्तराधिकार की पंक्ति में अगला माता और पिता के बाद अविवाहित पुत्रीऔर उसके बाद विवाहित पुत्रीहोती है। इस स्तर पर यह विवादित नहीं है कि वादी/अपीलार्थी एक विवाहित पुत्रीहै। सवाल यह उठता है कि क्या वह अपने पिता की संपत्ति के उत्तराधिकारी होने की हकदार है या नहीं।

11. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 को वर्ष 2005 में हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन अधिनियम 2005 का 39) दिनांक 09.09.2005 से प्रभावी संशोधनों के बाद, यह इस प्रकार हैः "6. (1) हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ होने पर और उसके पश्चात्, मिताक्षरा विधि द्वारा शासित संयुक्त हिंदू परिवार में, पुत्री सहदायीकी होगी–

(क) जन्म से पुत्र के समान ही अपने अधिकार में सहदायिक बन जाती है

(ख) सहदायिकी संपत्ति में उसे उतने ही अधिकार प्राप्त हैं जितने कि यदि वह पुत्र होती तो उसे प्राप्त होते।

(ग) उक्त सहदायिकी संपत्ति के संबंध में उतने ही दायित्वों के अधीन होगी जितनी कि पुत्र की है, और हिंदू मिताक्षरा सहदायिकी के किसी भी संदर्भ में सहदायिकी की पुत्री का संदर्भ शामिल समझा जाएगाः बशर्ते कि इस उपधारा 8 में निहित कुछ भी संपत्ति के किसी विभाजन या वसीयती निपटान सहित किसी भी स्वभाव या अलगाव को प्रभावित या अमान्य नहीं करेगा जो 20 दिसंबर, 2004 से पहले हुआ था।

(2) ऐसी कोई संपत्ति जिसके लिए एक महिला हिंदू उपधारा (1) के आधार पर हकदार हो जाती है, सहदायिकी स्वामित्व के अनुषंगी सहित उसके द्वारा धारित की जाएगी और इस अधिनियम या तत्काल प्रवृत्त किसी अन्य कानून में किसी बात के होते हुए भी, सक्षम संपत्ति के रूप में मानी जाएगी और उसके द्वारा वसीयती व्ययन द्वारा व्ययनित की जा सकती है।

(3) जहां हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ के पश्चात् किसी हिंदू की मृत्यु हो जाती है, वहां मिताक्षरा विधि द्वारा शासित संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति में उसका हित, इस अधिनियम के अधीन, यथास्थिति, वसीयतनामा या निर्वसीयत उत्तराधिकार द्वारा हस्तांतरित होगा और उत्तरजीविता द्वारा नहीं, और सहदायिक संपत्ति को इस प्रकार विभाजित किया गया समझा जाएगा जैसे कि कोई विभाजन हुआ हो और–

(क) पुत्री को वही हिस्सा आवंटित किया गया है जो एक पुत्र को आवंटित किया गया है

(ख) पूर्व–मृत पुत्र या पूर्व–मृत पुत्री का अंश, जैसा कि वे विभाजन के समय जीवित होते तो उन्हें मिलता, ऐसे पूर्व मृत पुत्री के उत्तरजीवी संतान को आवंटित किया जाएगा और

(ग) पूर्वमृत पुत्र या पूर्वमृत पुत्री के पूर्वमृत पुत्र का अंश जैसा ऐसे पुत्र ने तब प्राप्त किया होता जैसा वह बंटवारा के समय जीवित होते या होती ऐसे पूर्वमृत पुत्री या यथास्थिति पुत्र के पूर्वमृत पुत्र के पुत्र को आवंटित किया जाएगा।

स्पष्टीकरण–– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, किसी हिंदू मिताक्षरा सहदायिक का हित उस संपत्ति में वह अंश समझा जाएगा जो उसे आवंटित किया गया होता यदि उसकी मृत्यु से ठीक पहले संपत्ति का विभाजन हुआ होता, चाहे वह विभाजन का दावा करने का हकदार था या नहीं।

(4) हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ के पश्चात कोई

न्यायालय किसी पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के विरुद्ध अपने पिता, पितामह या प्रपौत्र से देय किसी ऋण की वसूली के लिए केवल हिंदू विधि के अधीन ऐसे पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के किसी ऐसे ऋण का निर्वहन करने के लिए पवित्र दायित्व के आधार पर कार्यवाही करने के किसी भी अधिकार को मान्यता नहीं देगाः बशर्ते कि हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से पहले अनुबंधित किसी ऋण के मामले में, इस उप–धारा में निहित कुछ भी प्रभावित नहीं करेगा–

(क) पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र के विरुद्ध कार्यवाही करने के किसी लेनदार के अधिकार, जैसा भी मामला हो या

(ख) उनके संबंध में या उनकी संतुष्टि के लिए किया गया कोई अलगाव। स्पष्टीकरण–खंड (क) के प्रयोजनों के लिए, ''पुत्र'', ''पौत्र'' या ''प्रपौत्र'' पद, जैसा भी मामला हो, उस पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र को संदर्भित करता है, जो हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से पहले पैदा हुआ था या गोद लिया गया था।

5. इस धारा में अंतर्विष्ट कोई भी बात ऐसे बंटवारे पर लागू नहीं होगा जिसे 20 दिसंबर, 2004 के पूर्व प्रभावी किया गया है।

स्पष्टीकरण –इस धारा के प्रयोजनों के लिए ''विभाजन'' से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) के अधीन विधिवत रजिस्ट्रीकृत विभाजन विलेख के निष्पादन द्वारा किया गया कोई विभाजन या न्यायालय की डिक्री द्वारा किया गया विभाजन अभिप्रेत है।

12. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 8 इस प्रकार हैः–

''धारा 8 पुरुषों के मामले में उत्तराधिकार के सामान्य नियम– *निर्वसीयत मृत हुए हिंदू पुरुष की संपत्ति इस अध्याय के प्रावधानों के अनुसार हस्तांतरित होगी–*

क. पहला, अनुसूची के प्रथम वर्ग में विनिर्दिष्ट संबंधी होने पर उत्तराधिकारी पर   ख. दूसरा, यदि वर्ग 1 में वारिस न हो तो उन वारिसों को जो अनुसूची के वर्ग 2 में विनिर्दिष्ट संबंधी है;

ग. तीसरा, यदि दो वर्गों में से किसी का भी उत्तराधिकारी नहीं है, तो मृतक के गोत्रजों को; तथा

घ. अन्ततः यदि कोई गोत्रज न हो तो मृतक के बन्धुओं को

13. इस प्रकार, धारा 6 के तहत, जैसा कि संशोधित किया गया है, एक बेटी, चाहे उसकी वैवाहिक स्थिति कुछ भी हो, हिंदू सह–संपत्ति में सहदायिक होगी और पैतृक/सहदायिक सम्पत्ति में बेटे के बराबर अंश पाने की हकदार होगी। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 8 किसी भी स्व–अर्जित संपत्ति या

निर्वसीयत मृत हिंदू पुरूष की एक अलग संपत्ति के संबंध में एक पुत्री को मान्यता देती है, उसे वर्ग 1 के उत्तराधिकारी में उसकी वैवाहिक स्थिति के बावजूद शामिल किया जाता है। इस प्रकार, दोनों धाराओं 6 और 8, सहदायिक सम्पत्ति और निर्वसीयत हिंदू पुरुष की पृथक संपत्ति के संबंध में, एक पुत्रीको पुत्र के बराबर हिस्सा होने का अधिकार है।

14. इस प्रकार, उजालार अधिनियम की धारा 171 और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 6 और 8 के स्पष्ट पठन से यह स्पष्ट है कि दोनों के बीच विवाद है। जैसा कि उजालार अधिनियम विवाहित पुत्रीऔर अविवाहित पुत्रीको पुरुष जातीय वंशज की उपस्थिति में संपत्ति विरासत में प्राप्त करने से बाहर करता है। वहीं, हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 पुत्रीके अधिकार को बेटे के बराबर होने के लिए मान्यता देता है, चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित। इस प्रकार, यदि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम मामले में लागू किया जाता है, तो संपत्ति भी वादी/अपीलार्थी द्वारा विरासत में दी जाएगी, जबकि यदि यू. जेड. ए. एल. आर. अधिनियम लागू किया जाता है तो वादी/अपीलाथी संपत्ति में कोई हिस्सा रखने का हकदार नहीं होगी, क्योंकि वह पुत्र पर वरीयता प्राप्त करने की उत्तराधिकारी नहीं है।

15. उजालआर अधिनियम की धारा 129 भूधारकों के वर्गों का वर्णन करती है। अधिनियम निम्नलिखित भूधारकों को मान्यता देता है: (i) भूमिधर संक्रमणीय अधिकारों के साथ (ii) भूमिधर गैर संक्रमणीय अधिकारों के साथ (iii) असामी और (iv) सरकारी पट्टेदार।

16. उजालार अधिनियम की धारा 130 को संक्रमणीय अधिकारों के भूमिधर के संबंध में प्रावधान करती है। उक्त धारा में कई बार संशोधन किया गया है। उत्तराखंड संशोधन संख्या 2016 का 10 दिनांक 06.04.2016 के आधार पर एक संशोधन किया गया था। जिसके द्वारा खंड (घ) जोड़ा गया है खंड (ई) अधिनियम सं 2014 का 04 और खंड (च) और (छ) अधिनियम सं. 2016 का 10वां संस्करण भी जोडा गया है। हालांकि, उक्त प्रावधानों की बेहतर समीक्षा के लिए, पूरे खंड को नीचे उद्धृत किया गया है:

*"**130. संक्रमणीय अधिकारों के साथ भूमिधर**—निम्नलिखित वर्गों में से किसी से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति, जो धारा 131 में निर्दिष्ट व्यक्ति नहीं है, को संक्रमणीय अधिकारों के साथ भूमिधर कहा जाएगा और उसके पास सभी अधिकार होंगे और वह इस अधिनियम द्वारा या उसके तहत ऐसे भूमिधारों को प्रदत्त या उन पर आरोपित किये गये है। अधिरोपित सभी देनदारियों के अधीन होगा, अर्थात्*

(क) प्रत्येक व्यक्ति जो उत्तर प्रदेश भूमि कानून (संशोधन) अधिनियम, 1977 के प्रारंभ की तारीख से तुरंत पहले भूमिधर था

(ख) प्रत्येक व्यक्ति जो, उक्त तिथि से तुरंत पहले, धारा 131 के खंड (क) या खंड (ग) में निर्दिष्ट सीरदार था, जैसा कि उक्त तिथि से तुरंत पहले था

(ग) प्रत्येक व्यक्ति जो किसी अन्य प्रकार से कथित तिथि को या उसके पश्चात इस अधिनियम के निर्देशों के अधीन या अनुसार ऐसे भूमिधर का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

(घ) वे शरणार्थी जो वर्ष 1971 से पूर्व पूर्वी पाकिस्तान (विद्यमान बांग्लादेश) से भारत आए थे और जिन्हें 1980 से पूर्व भारत सरकार की पुनर्वास योजना के अधीन जिला पुनर्वास कार्यालय, बरेली द्वारा सरकारी अनुदान अधिनियम, 1895 के अधीन भारत सरकार की पुनर्वास योजना के अंतर्गत अस्थायी जिला नैनीताल (वर्तमान जिला उधम सिंह नगर) की प्रादेशिक अधिकारिता के भीतर कृषि के लिए पट्टे पर भूमि आवंटित की गई थी और जो ऐसे मूल पट्टा या उनके कानूनी उत्तराधिकारी हैं और बिना किसी सहमति के भूमि में मूल पट्टा या कब्जे की सहमति के साथ निम्नलिखित प्रक्रिया द्वाराः–

(1) ऐसे मूल पट्टा या उनके कानूनी उत्तराधिकारी जिन्होंने 09–11–2000 को प्रचलित सर्कल दर के भाग पर गणना की जाने वाली उपरोक्त प्रीमियम जमा की है,

(2) ऐसा मूल पट्टेदार अथवा उनके विधिक वारिस जिन्होंने आज तक कोई प्रीमियम जमा नहीं किया है, वह दिनांक 09.11.2000 तक का सर्किल रेट संगणित तथा जमा करके स्वयं को संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर बनने के योग्य घोषित करा सकते है।

(3) भूमि के कब्जे वाले ऐसे व्यक्ति जो मूल पट्टा या उसके कानूनी उत्तराधिकारियों की सहमति से भूमि के कब्जे में आ गए हैं और जिन्होंने आज तक कोई प्रीमियम जमा नहीं किया है, यदि वे 01–09–2005 को प्रचलित सर्कल दर के हिस्से पर गणना की गई प्रीमियम जमा करते हैं, तो उपरोक्त प्रीमियम के निक्षेपण के बाद भूमिधारी हस्तांतरणीय अधिकार दिए जाएंगे।

(4) ऐसे व्यक्ति जो मूल पट्टा या उनके कानूनी उत्तराधिकारियों की सहमति के बिना भूमि के कब्जे में हैं, उन्हें भूमिधारी संक्रमणीय अधिकार दिए जाएंगे यदि वे 01–09–2010 को प्रचलित सर्कल दर का प्रीमियम हिस्सा जमा करते हैं।

(5) कि उपरोक्त प्रीमियम छह महीने की दो किस्त में जमा किया जा सकता है। स्पष्टीकरणः ऐसे सभी व्यक्ति जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जैसा कि उत्तराखंड में अपनाया गया है) के

प्रावधानों के तहत कानूनी उत्तराधिकारियों/उत्तराधिकारियों की श्रेणी में आते हैं, जैसा कि धारा 171 से 175 में निहित है, उन्हें कानूनी उत्तराधिकारी माना जाएगा।

(ङ) सरकार द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार उत्तराखंड राज्य के क्षेत्र के भीतर श्रेणी 4 की ऐसी भूमि, जहां व्यक्तियों को 30.06.1983 की तारीख से या तारीख से पहले अनाधिकृत रूप से कब्जा कर लिया गया था और वर्तमान में उस भूमि में भी सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कब्जा कर लिया गया है।

(च) ऐसे व्यक्ति जिन्हें राज्य के भीतर श्रेणी तीन की भूमि आवंटित की गई है और जिसमें पात्र और कानूनी पट्टेदार भी वर्तमान समय में ऐसी भूमि का धारक है, राज्य सरकार द्वारा आदेश द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संक्रमणीय अधिकार धारकों की घोषणा राज्य सरकार करेगी।

(छ) नैनीताल जिले के नगर पंचायत क्षेत्र लाल कुआं के पट्टेदार और अनधिकृत कब्जाधारियों को सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संक्रमणीय अधिकारों का भू–धारक घोषित किया जाएगा।

17. इस प्रकार, संक्रमणीय अधिकार रखने वाले भूमिधर को इसके तहत बताए गए किसी भी वर्ग से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है, जो धारा 131 में निर्दिष्ट व्यक्ति नहीं है, जो इस मामले में लागू नहीं है, जो उत्तर प्रदेश भूमि विधिया संशोधन अधिनियम 1977 के प्रारंभ से ठीक पहले संक्रमणीय अधिकार रखने वाला भूमिधर था। प्रत्येक व्यक्ति, जो उक्त तिथि से तुरंत पहले, धारा 131 के खंड (ए) या खंड (सी) के लिए निर्दिष्ट सीरदार था, जैसा कि यह उक्त तिथि से तुरंत पहले था या कोई व्यक्ति, जो किसी अन्य तरीके से उक्त तिथि को या उसके बाद अधिनियम के प्रावधानों के तहत या उसके अनुसार ऐसे भूमिधर के अधिकार प्राप्त करता है।

18. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संक्रमणीय अधिकार रखने वाला भूमिधर व्यक्ति का एक विशेष वर्ग है, जिसका संपत्ति पर अधिकार उजालार अधिनियम द्वारा मान्यता प्राप्त है। लेकिन जिस शर्त को पूरा किया जाना है वह यह है कि उसने उजालार अधिनियम 2015 के प्रावधानों के अनुसार भूमिधर के रूप में संपत्ति के अधिकार प्राप्त कर लिए हो।

19. इस स्तर पर यह विवादित नहीं है कि संपत्ति स्वर्गीय श्री हुकुम सिंह के पास निहित नहीं थी, बल्कि उन्होंने इसे किसी अन्य भूमिधर व्यक्ति से खरीदा था। इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि जो संपत्ति किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति से खरीदी गई है, जो संक्रमणीय अधिकार रखने वाला भूमिधर था, वह केवल उस संपत्ति का उत्तराधिकार के प्रयोजन के लिए स्वामी होगा

तथा यूजेडएएलआर अधिनियम की धारा 171 में निहित प्रावधान उस पर लागू नहीं होगा। वह उत्तराधिकार के सामान्य कानून द्वारा निर्देशित होगा, जैसा कि हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के तहत निहित है।

20. उड़ीसा उच्च न्यायालय की दो जजो की खंड पीठ ने रिट याचिका (सी) सं. 28966/2011 (उर्वशी साहू बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य), दिनांक 11.08.2021 के निर्णय द्वारा, जिसमें अधोहस्ताक्षरित सदस्य था, विवाहित बेटियों के साथ किए गए भेदभाव पर ध्यान दिया गया है। हम उपरोक्त मामले में सुश्री सावित्री राथो, न्यायमूर्ति द्वारा लिखित सहमति वाले निर्णय पर विचार करते हैं। हम अधोहस्ताक्षरित के विचारों से सहमत होते हुए न्यायमूर्ति सावित्री राथो द्वारा की गई सभी टिप्पणियों को उद्धृत करना उचित समझते हैं।

"15. महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन (संक्षेप में "सी. ई. डी. ए. डब्ल्यू".) का उल्लेख करना उचित होगा, जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1979 में अपनाया गया था, जिसे अक्सर महिलाओं के लिए अधिकारों के एक अंतर्राष्ट्रीय विधेयक (जोर दिया जाता है) के रूप में वर्णित किया जाता है। प्रस्तावना और 30 अनुच्छेदों से युक्त, यह परिभाषित करता है कि महिलाओं के खिलाफ भेदभाव क्या है और इस तरह के भेदभाव को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय कार्रवाई के लिए एक एजेंडा निर्धारित करता है। (जोर दिया गया)

कन्वेंशन महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को इस प्रकार परिभाषित करता है: "... लिंग के आधार पर किया गया कोई भी भेद, बहिष्कार या प्रतिबंध जिसका प्रभाव या उद्देश्य महिलाओं द्वारा मान्यता, प्रयोग या अनुप्रयोग को प्रभावित करना या रद्द करना है, चाहे उनकी वैवाहिक स्थिति कुछ भी हो, पुरुषों और महिलाओं की समानता के आधार पर, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रताया किसी अन्य क्षेत्र को भी प्रभावित करता है।

CEDAW की प्रस्तावना में दुहराया गया है कि महिलाओं के खिलाफ भेदभाव अधिकारों की समानता और मानव गरिमा के सम्मान के सिद्धांतों का उल्लंघन करना अपने देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में पुरुषों के साथ समान शर्तों पर भागीदारी के लिए एक बाधा है, समाज और परिवार से व्यक्तित्व के विकास में बाधा डालता है और अपने देशों और मानवता की सेवा में महिलाओं की क्षमताओं के पूर्ण विकास के लिए इसे और अधिक कठिन बनाता है। राज्य सभी रूपों में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने के लिए कन्वेंशन को स्वीकार करके कई उपाय करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, जिनमें शामिल हैं:– अपनी कानूनी प्रणाली में पुरुषों और महिलाओं

की समानता के सिद्धांत को शामिल करना, सभी भेदभावपूर्ण कानूनों को समाप्त करना और महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को प्रतिबंधित करने वाले उपयुक्त कानूनों को अपनाना। भेदभाव के खिलाफ महिलाओं की प्रभावी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए न्यायाधिकरणों और अन्य सार्वजनिक संस्थानों की स्थापना करना और व्यक्तियों, संगठनों या उद्यमों द्वारा महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के सभी कृत्यों का उन्मूलन सुनिश्चित करना।

भारत सरकार सी. ई. डी. ए. डब्ल्यू. में सक्रिय भागीदार थी, जिसने 19–6–1993 को इसकी पुष्टि की और अनुच्छेद 5 (ई), 16 (1), 16 (2) और 29 पर आरक्षण के साथ 8–8–1993 को 17 सी. ई. डी. ए. डब्ल्यू. में प्रवेश किया।

''लैंगिक समानता'' का सिद्धांत भारतीय संविधान और इसकी प्रस्तावना और मौलिक अधिकारों में निहित है। इसका उल्लेख मौलिक कर्तव्यों के साथ–साथ निर्देशक सिद्धांतों में भी मिलता है। हमारा संविधान महिलाओं को समानता प्रदान करता है, कानून के समक्ष उनकी समानता सुनिश्चित करता है और किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। इसलिए यह उम्मीद की जाती है कि सरकार को बाधाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए, सभी लिंग–आधारित भेदभाव को प्रतिबंधित करना चाहिए जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 द्वारा भी अनिवार्य है। इसे मौजूदा कानूनों और विनियमों में लिंग आधारित भेदभाव को दूर करने के लिए कानून और इसकी नीतियों को संशोधित करने के लिए सभी संभव कदम उठाने चाहिए। दुर्भाग्य से, हर दिन, हम कानून सहित सभी क्षेत्रों में लिंग के आधार पर भेदभाव के उदाहरणों का सामना करते हैं। यह केवल एक उदाहरण है। लगभग आधी सदी पहले, ***सी. बी. मुथम्मा बनाम भारत संघ और अन्य*** *के मामले में* ***न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्ण अय्यर ने 1979 एससीसी (4) 260*** *में कहा कि, जहां याचिकाकर्ता एक महिला आई0एफ0एस0 अधिकारी ने सेवा नियमों में दो कठोर प्रावधानों को चुनौती दी थी एक–जिसमें सेवा की एक महिला सदस्य को शादी से पहले सरकार की लिखित अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता थी और महिला सदस्य को शादी के बाद किसी भी समय इस्तीफा देने की आवश्यकता हो सकती है यदि सरकार संतुष्ट है कि उसके परिवार और घरेलू प्रतिबद्धताओं से सेवा के सदस्य के रूप में उसके कर्तव्यों में बाधा आएगी और दूसरा–कि कोई भी विवाहित महिला सेवा में नियुक्त होने के अधिकार के रूप में हकदार नहीं होगी। उन्होंने यह भी कहा था कि उन्हें पदोन्नति नहीं दी जा रही थी और सेवा में महिलाओं के साथ भेदभाव के कारण पुरुष अधिकारियों द्वारा उन्हें हटा दिया गया था। याचिका को अंततः खारिज कर दिया गया क्योंकि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को*

पदोन्नत किया गया था, एक आपत्तिजनक प्रावधान को हटा दिया गया था और दूसरा हटाने की प्रक्रिया में था और सरकार याचिकाकर्ता की वरिष्ठता की समीक्षा करने के लिए सहमत हो गई थी। लेकिन न्यायमूर्ति वी. कृष्ण अय्यर ने अपनी अनूठी शैली में और बिना किसी शब्द को कम किए इस प्रकार टिप्पणी की थी:

"... 6. पहली बार में यह नियम अनुच्छेद 16 की अवहेलना है, यदि एक विवाहित पुरुष को अधिकार है, तो एक विवाहित महिला, अन्य चीजें समान होने के कारण, इससे भी बदतर स्थिति में नहीं है। यह स्त्री–द्वेषपूर्ण मुद्रा कमजोर वर्ग को यह भूलने की पुरूष संस्कृति को एक झटका है कि कैसे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए हमारा संघर्ष भी महिलाओं की गुलामी के खिलाफ एक लड़ाई थी। स्वतंत्रता अविभाज्य है, इसलिए न्याय भी अविभाज्य है। यह कि अनुच्छेद 14 और 16 में निहित हमारे संस्थापक विश्वास को भारत की आधी मानवता यानी हमारी महिलाओं की तुलना में दुखद रूप से नजरअंदाज किया जाना चाहिए था, पुस्तक में संविधान और लॉ इन एक्शन के बीच की दूरी पर एक दुखद प्रतिबिंब है। और यदि संसद के सरोगेट के रूप में कार्यपालिका भाग III के तहत नियम बनाती है, विशेष रूप से जब उच्च राजनीतिक पद, यहां तक कि राजनयिक कार्य भी महिलाओं द्वारा भरे गए हैं, तो लिंग समानता के लिए कठोर परहेज का अनुमान अपरिहार्य है। 7. हमारा मतलब यह सार्वभौमिक या हठधर्मिता नहीं है कि पुरुष और महिलाएं सभी व्यवसायों और सभी स्थितियों में समान हैं और व्यावहारिक होने की आवश्यकता को बाहर नहीं करते हैं जहां विशेष रोजगार की आवश्यकताएं, लिंग की संवेदनशीलता या सामाजिक क्षेत्रों की विशिष्टताएं या दोनों में से किसी भी लिंग की बाधाएं चयन को मजबूर कर सकती हैं। लेकिन जहां भेदभाव प्रदर्शित करने योग्य है, वहां समानता का शासन होना चाहिए...

*" **अनुज गर्ग बनाम होटल एसोसिएशन ऑफ इंडिया, (2008) 3 एस. सी. सी. 1** के मामले में, पंजाब आबकारी अधिनियम 1914 की धारा 30 के प्रावधान, जिसमें 25 वर्ष से कम आयु के पुरुषों और महिलाओं को उस परिसर में नियोजित करने पर प्रतिबंध लगाया गया है जहां शराब बेची जाती है, को चुनौती दी गई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय की कुछ टिप्पणियां बहुत प्रासंगिक हैं। उन्हें नीचे दिया गया है:*

"... 7. यह अधिनियम एक पूर्व–संवैधानिक विधान है। यद्यपि इसे संविधान के अनुच्छेद 372 के संदर्भ में सुरक्षित रखा गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 19 की कसौटी पर इसकी वैधता को चुनौती देना कानून में अनुमत है। उठाए गए प्रश्नों को शुरू करते समय, यह जानना उचित

हो सकता है कि एक कानून को हालांकि उस समय की सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए एक वैध विधान माना जा सकता था, लेकिन घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र दोनों में होने वाले परिवर्तनों के साथ, इस तरह के कानून को अमान्य भी घोषित किया जा सकता है।

"21. जब मूल अधिनियम लागू किया गया था, तो दो लिंगों के बीच समानता की अवधारणा अज्ञात थी। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता लागू करना था। संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 को तैयार करने में, उस संबंध में संवैधानिक लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया था। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं होगा कि किसी भी परिस्थिति में लिंग के आधार पर वर्गीकरण पूरी तरह से अनुज्ञेय नहीं होगा, लेकिन यह सामान्य बात है कि जब किसी विधान की वैधता का परीक्षण अनुच्छेद 14 और 15 में निहित समानता खंडों के आधार पर किया जाता है, तो उसका भार राज्य पर होगा। जबकि इस प्रकार के विधान की वैधता पर विचार करते हुए, न्यायालय को संविधान के भाग IV में निहित प्रावधानों सहित संविधान के अन्य प्रावधानों पर ध्यान देना था।

25. न्यायसंगत अपवादों के अधीन रोजगार के लिए विचार किए जाने के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 16 द्वारा मान्यता दी गई है। रोजगार का अधिकार अपने आप में एक मौलिक अधिकार नहीं हो सकता है, लेकिन भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 दोनों के संदर्भ में, समान रूप से स्थित प्रत्येक व्यक्ति को इसके लिए विचार किए जाने का मौलिक अधिकार है। जब वर्गीकरण के कथित आधार पर भेदभाव करने की मांग की जाती है, तो इस तरह के वर्गीकरण को एक तर्कसंगत मानदंड पर स्थापित किया जाना चाहिए। वे मानदंड जो किसी भी संवैधानिक प्रावधान के अभाव में 20वीं शताब्दी की शुरुआत में सामाजिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए दोहराए जाएंगे, 21वीं शताब्दी में एक तर्कसंगत मानदंड नहीं हो सकते हैं। 20वीं शताब्दी की शुरुआत में, आतिथ्य क्षेत्र सामान्य रूप से महिलाओं के लिए खुला नहीं था। पिछले 60 वर्षों में भारत में महिलाओं ने सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश किया है।

वे जमीनी स्तर पर लोकतंत्र में लोगों का प्रतिनिधित्व भी करते रहे हैं। वे अब भारी परिवहन वाहनों के चालकों, सर्विस कैरिज के कंडक्टरों, पायलटों आदि के रूप में कार्यरत हैं। महिलाओं को एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पद तक तथा चतुर्थ श्रेणी के पदों पर कब्जा करते देखा जा सकता है। उन्हें अब व्यापक रूप से पुलिस और सेना सेवाओं दोनों में स्वीकार किया जाता है।

ए. सत्यनारायणा बनाम एस. पुरुषोत्तम, (2008) 5 एस. सी. सी. 416 *के*

मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया हैः

34. एक वैधानिक नियम, यह एक सामान्य कानून है, जिसे संवैधानिक योजना के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। नियम मनमाना नहीं होना चाहिए। यह उचित होना चाहिए, चाहे वह मूल हो या अधीनस्थ विधान हो। यह अनुमान लगाया जाता है कि विधानमंडल उचित होगा।

निर्विवाद रूप से, अधीनस्थ विधान नियम निर्माता के अनुभव को प्रतिबिंबित कर सकता है, लेकिन उसे एक तार्किक निष्कर्ष पर ले जाने में सक्षम होना चाहिए....

" माननीय उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में, सचिव, ***रक्षा मंत्रालय बनाम बबीता पुनिया के मामले में 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 200*** *में सेना में अल्पकालिक सेवा आयोगों में महिलाओं की नियुक्ति पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की हैः—*

"67. केंद्र सरकार का नीतिगत निर्णय महिला अधिकारियों के अवसर की समानता के अधिकार की मान्यता है। उस अधिकार का एक पहलू लिंग के आधार पर गैर—भेदभाव का सिद्धांत है जो संविधान के अनुच्छेद 15 (1) में सन्निहित है। अधिकार का दूसरा पहलू अनुच्छेद 16 (1) के तहत सार्वजनिक रोजगार के मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता है।

53. उपनिवेशवाद के बाद एक स्वतंत्र राज्य के जन्म के सत्तर साल बाद भी संविधान के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को पहचानने के लिए दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता है...

16. लेकिन ओडिशा एकमात्र ऐसा राज्य नहीं है जिसके नियम अनुकंपा नियुक्ति के मामले में एक विवाहित पुत्रीके खिलाफ इस तरह के भेदभाव को दर्शाते हैं। हमारे देश के कई अन्य राज्यों में, अनुकंपा नियुक्ति के लिए बनाए गए नियमों में इसी तरह का भेदभाव बड़े पैमाने पर लिखा गया है, जिसके लिए विभिन्न उच्च न्यायालयों ने प्रावधानों की जांच की है और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा सुनाए गए कई निर्णय हैं जिन्होंने इस तरह के भेदभाव की निंदा की है और यह अभिनिर्धारित किया है कि नीति/नियमों/विनियमन की कोई भी कार्रवाई/खंड जो एक विवाहित पुत्रीको अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार करने से वंचित करता है, संविधान के अनुच्छेद 14,15,16 और अनुच्छेद—39 (ए) के विपरीत है।

17. जबकि कुछ मामलों में आपत्तिजनक खंड/प्रावधान को निरस्त कर दिया गया है, अन्य में इसे असंवैधानिक घोषित होने से बचाने के लिए पढ़ा गया है, ताकि एक विवाहित पुत्रीको परिवार के सदस्यों के परिवार की परिभाषा के भीतर शामिल किया जा सके और/या अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किए जाने

और/या नियुक्ति दिए जाने का निर्देश दिया जा सके। कुछ उच्च न्यायालयों ने फैसला सुनाया है कि यदि पुत्रीअविवाहित थी और उसकी मृत्यु के समय मृतक सरकारी कर्मचारी और एकमात्र संतान पर निर्भर थी, तो उसे नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का अधिकार है। कुछ उच्च न्यायालयों ने कहा है कि योजना/नियमों के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, मृतक कर्मचारी की मृत्यु के समय आश्रित बच्चों की संख्या के बावजूद, एक विवाहित पुत्रीको रोजगार के लिए विचार किए जाने का अधिकार है। ***उधम सिंह नगर जिला सहकारी बैंक लिमिटेड और एक अन्य बनाम अंजुला सिंह और अन्य के मामले मेंः एआईआर 2019 यू. टी. आर. 69 2017 की विशेष अपील संख्या. 187*** *में कहा गया कि निम्नलिखित प्रश्न उत्तराखंड उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ को भेजे गए थेः*

"(i) क्या उत्तर प्रदेश के नियम 2 (सी) में" परिवार "की परिभाषा में संदर्भित किसी भी सदस्य की नियुक्ति हार्नेस नियम, 1974 (संक्षेप में" 1974 के नियम ") और यू. पी. के विनियमन 104 के नीचे दिए गए नोट में सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 (संक्षेप में "1975 विनियम") अनुकंपा नियुक्ति के लिए हकदार होंगे, भले ही वे मृत्यु के समय सरकारी कर्मचारी पर निर्भर न हों?

(ii) क्या 1974 के नियमों के नियम 2 (ग) के तहत "परिवार" की परिभाषा में और 1975 के विनियमों के विनियम 104 के नीचे दिए गए नोट में "विवाहित बेटी" को शामिल नहीं करना भेदभावपूर्ण है, और भारत के संविधान के भाग III में अनुच्छेद 14,15 और 16 का उल्लंघन है?

66. हम इस संदर्भ का उत्तर देते हैं किः– i. प्रश्न संख्या 1 का उत्तर हां में दिया जाना चाहिए। यह केवल सरकारी कर्मचारी के परिवार का एक आश्रित सदस्य है, जो 1974 के नियमों और 1975 के विनियमों दोनों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का हकदार है।

ii- प्रश्न संख्या. 2 का उत्तर भी हां में दिया जाना चाहिए। 1974 के नियमों के नियम 2 (सी) और 1975 के विनियमों के विनियम 104 के तहत "परिवार" की परिभाषा में "विवाहित बेटी" को शामिल न करना, जिससे उसे अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के अवसर से वंचित किया जा सके, भले ही वह मृत्यु के समय सरकारी कर्मचारी पर 24 वर्ष निर्भर थी, भेदभावपूर्ण है और भारत के संविधान के भाग ㎖ में अनुच्छेद 14,15 और 16 का उल्लंघन है।

iii. हालाँकि, हम 1974 के नियमों के नियम 2 (सी) में "परिवार" की परिभाषा और 1975 के विनियमों के विनियम 104 के नीचे दिए गए नोट को पढ़ते हैं, ताकि इसे असंवैधानिक होने से बचाया जा सके। परिणामस्वरूप एक "विवाहित बेटी" को 1974 के नियमों और 1975 के विनियमों के तहत अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से मृतक सरकारी कर्मचारी के "परिवार" की समावेशी

परिभाषा के भीतर भी रखा जाएगा।

"मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने मीनाक्षी दुबे बनाम एम0पी0 पूर्व क्षेत्र विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड और अन्य एआईआर 2020 एससीसी ऑनलाइन एमपी 383 एमपी 60 के मामले में निम्नलिखित बिन्दुओं पर निष्कर्ष प्राप्त करना था।

"क्या राज्य सरकार द्वारा बनाई गई नीति के तहत अनुकंपा नियुक्ति के मामले में, जिसमें आश्रितों का कुछ वर्ग जिसमें अविवाहित पुत्रीएक विधवा पुत्रीऔर एक तलाकशुदा पुत्रीशामिल है और मृतक सरकार के मामले में। नौकर जिसकी केवल पुत्रीहो, ऐसी विवाहित पुत्रीजो पूरी तरह से सरकार पर निर्भर थी। नौकर के अधीन वह मृतक सरकार के अन्य आश्रितों की जिम्मेदारी वहन करने का वचन देती है। खंड 2.2 और 2.4 को संविधान के अनुच्छेद 14,15,25 और 51ए (ई) का उल्लंघन करने वाला कहा जा सकता है। इसने इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

"..17 अनुकंपा नियुक्ति की नीति के अनुसार, राज्य ने पहले ही अनुकंपा नियुक्ति के लिए विवाहित बेटियों (खंड 2.4) के दावों पर विचार करने का निर्णय लिया है, लेकिन इस तरह का विचार ऐसी बेटियों तक ही सीमित था, जिनके कोई भाई नहीं हैं। सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के बाद, यह निर्णय लेने और यह चुनने के लिए पति/पत्नी के लिए खुला है कि क्या उसका पुत्र या पुत्रीअनुकंपा नियुक्ति के लिए सबसे उपयुक्त है और परिवार के प्रति जिम्मेदारियां लेती है जो पहले मृतक सरकारी कर्मचारी द्वारा निर्वहन की जा रही थीं।

20. ..... " ऊपर उल्लिखित निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि खंड 2.2, जहां तक यह विवाहित महिला को अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार के अधिकार से वंचित करता है, समानता खंड का उल्लंघन करता है और खंड 2.4 को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। सरकार ने विवाहित पुत्रीके विचार के अधिकार को आंशिक रूप से मान्यता दी, लेकिन इस तरह का विचार ऐसी बेटियों तक ही सीमित था, जिनके कोई भाई नहीं थे। खंड 2.2, जैसा कि देखा गया है, मृतक सरकारी कर्मचारी के जीवित पति या पत्नी को बेटे या अविवाहित पुत्रीको नामित करने का विकल्प देता है। वैवाहिक स्थिति से संबंधित पुत्र पर विचार करते समय कोई शर्त नहीं लगाई गई है। पुत्रीके लिए "अविवाहित" का विशेषण/शर्त चिपकाई जाती है। यह शर्त बिना किसी औचित्य के है और इसलिए, मनमाना और भेदभावपूर्ण प्रकृति का है।

21. किसी भी कोण से देखने पर, यह स्पष्ट है कि खंड 2.2, जो विवाहित पुत्रीको प्रतिफल के अधिकार से वंचित करता है, न्यायिक जांच को कायम नहीं

रख सकता है। इस प्रकार, विभिन्न कारणों से, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए इच्छुक हैं कि इंदौर पीठ ने श्रीमती मीनाक्षी (सुप्रा) के मामले में उक्त नीति के खंड 2.2 में उचित रूप से हस्तक्षेप किया है।

22. संक्षेप में, मोटे तौर पर, हम इंदौर पीठ द्वारा श्रीमती मीनाक्षी (सुप्रा) के मामले में निकाले गए निष्कर्ष से सहमत हैं और संदर्भ का उत्तर निम्नानुसार देना उचित समझते हैं:

"दिनांक 29.09.2014 की नीति का खंड 2.2 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14,15,16 और 39 (ए) का उल्लंघन करता है, इस हद तक कि यह विवाहित पुत्रीको अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार के अधिकार से वंचित करता है। हमें पॉलिसी के खंड 2.4 को अधिकार से बाहर घोषित करने का कोई कारण नहीं मिलता है। इस हद तक, हम मीनाक्षी (सुप्रा) के मामले में इंदौर पीठ के फैसले को खारिज करते हैं। '

23. यह विवाद्यक तद्नुसार उत्तरित किया जाता है।

*"हिमाचल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने **ममता देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्यः 2020 एससीसी ऑनलाइन एचपी 2125:21 लैब आईसी 1** के मामले में राज्य को याचिकाकर्ता को अनुकंपा रोजगार देने का निर्देश दिया है, जो विवाहित पुत्रीथी, यदि वह अन्यथा पात्रता मानदंडों को पूरा करती है, तो निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित करती है:*

"...22. इसके अलावा, तत्कालीन मामले में परिवार में कोई पुरुष सदस्य नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता के पिता, जिनकी मृत्यु हो गई थी, अपने पीछे केवल अपनी विधवा और दो बेटियों को छोड़ गए, याचिकाकर्ता, बड़ी पुत्रीथी। अनुकंपा नियुक्ति के लिए नीति का उद्देश्य और उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। परिवार में किसी भी पुरुष बच्चे की अनुपस्थिति में, राज्य अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है और परिवार के प्रति मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता है, जो अपने एकमात्र कमाने वाले की मृत्यु के बाद वित्तीय बाधाओं का सामना कर रहा हो सकता है।

23. जैसा कि ऊपर कहा गया है, अनुकंपा नियुक्ति का उद्देश्य न केवल समाज कल्याण है, बल्कि मृतक सरकारी कर्मचारी के परिवार का समर्थन करना भी है, इसलिए, एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते, राज्य को एक परिवार को गरीबी से ऊपर उठाने के लिए अपना हाथ बढ़ाना चाहिए और शादीशुदा बेटियों की ओर पीठ नहीं मोड़नी चाहिए, बल्कि उन्हें गरीबी की ओर नहीं धकेलना चाहिए। यदि राज्य किसी विवाहित पुत्रीको अनुकंपा नियुक्ति से वंचित करता है, जिसे मृतक कर्मचारी की मृत्यु के बाद परिवार के जीवित सदस्यों की देखभाल करनी पड़ती है, केवल इस कारण से कि वह विवाहित है, तो नीति का पूरा उद्देश्य

दूषित हो जाता है।

24. तीखे विचार–विमर्श के बाद, यह पता चलता है कि अनुकंपापूर्ण नियुक्ति का मुख्य उद्देश्य एक परिवार को वित्तीय शून्य से बचाना है, जो मृत कर्मचारी की मृत्यु के बाद पैदा हुआ था। इस वित्तीय रिक्तता को याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करके भरा जा सकता है, जिसे अपने मृत पिता के उत्तरजीवियों की देखभाल करनी है और उसे केवल इस आधार पर अनुकंपा नियुक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है कि वह एक विवाहित पुत्रीहै, विशेष रूप से जब परिवार में कोई पुरुष बच्चा नहीं है और याचिकाकर्ता के पास उसकी माँ और छोटी बहन से 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' हैं, जो परिवार में एकमात्र सदस्य हैं।

25. तत्कालीन मामले में, यदि याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी जाती है, जिसे अपनी विधवा मां और बहन की देखभाल करनी है, यदि वह अन्यथा पात्र है और वह उपयुक्त मानदंडों को पूरा करती है, तो पूरे परिवार को गरीबी की ओर धकेल दिया जाएगा, जिससे अनुकंपा रोजगार नीति का वास्तविक उद्देश्य दूषित हो जाएगा

''.... हाल के एक निर्णय में, ***मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम ज्योति शर्मा: 2021 SCC ऑनलाइन*** *के मामले में, एक विवाहित पुत्रीको अनुकंपा नियुक्ति के लिए योग्य बनाने के प्रावधान में केवल तभी गलती पाई है जब वह एकमात्र संतान हो। सी. ई. डी. ए. डब्ल्यू. और बबीता पुनिया (उपर्युक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए, इसने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:*

''...खंड 2.4 को प्रस्तुत करके, सरकार ने विवाहित पुत्रीके विचार के अधिकार को आंशिक रूप से मान्यता दी, लेकिन इस तरह का विचार ऐसी बेटियों तक ही सीमित था, जिनके कोई भाई नहीं हैं। खंड 2.2, जैसा कि देखा गया है, मृतक सरकारी कर्मचारी के जीवित पति या पत्नी को बेटे या अविवाहित पुत्रीको नामित करने का विकल्प देता है। वैवाहिक स्थिति से संबंधित पुत्र पर विचार करते समय कोई शर्त नहीं लगाई गई है। पुत्रीके लिए ''अविवाहित'' का विशेषण/शर्त चिपकाई जाती है।

''.. खंड 2.2, जैसा कि देखा गया है, मृतक सरकारी कर्मचारी के जीवित पति या पत्नी को बेटे या अविवाहित पुत्रीको नामित करने का विकल्प देता है। वैवाहिक स्थिति से संबंधित पुत्र पर विचार करते समय कोई शर्त नहीं लगाई गई है। पुत्रीके लिए ''अविवाहित'' का विशेषण/शर्त चिपकाई जाती है। यह शर्त बिना किसी औचित्य के है और इसलिए, मनमाना और भेदभावपूर्ण प्रकृति का है।

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने भावना चौरसिया बनाम एम0पी0राज्य 2019 (2) MPLJ 707 *के मामले में रिपोर्ट किए गए निम्नानुसार निर्णय दिया है:*

"... 15. यह आम जानकारी की बात है कि वर्तमान समय में बड़ी संख्या में एकल बच्चे वाले परिवार हैं। बहुत से परिवारों में कोई बच्चा नहीं है। पुत्रीशादी के बाद भी माता–पिता की देखभाल करती है। माता–पिता अपनी बेटियों पर बहुत अधिक भरोसा करते हैं। ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जहां बेटे माता–पिता की देखभाल करने के अपने दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहे हैं और विवाहित बेटियों द्वारा ईमानदारी से दायित्व का निर्वहन किया जाता है। इस प्रकार, यह न्याय का उपहास होगा यदि विवाहित बेटियों को अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार के अधिकार से वंचित किया जाता है।

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने ***सरोजनी भोई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य के मामले में 30.11.2015*** *2014 की डब्ल्यूपी (एस) संख्या. 296 में यह अभिनिर्धारित किया है कि विवाहित पुत्रीको अनुकंपा नियुक्ति से विचार करने पर प्रतिबंध लगाने वाली सरकार की आक्षेपित नीति संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाली है। विवाह के बाद भी एक पुत्रीअपने पिता की पुत्रीबनी रहती है और उसे अपने पिता के परिवार से संबंधित नहीं माना जा सकता था। विवाह की संस्था पुरुष और महिला का मूल नागरिक अधिकार था और विवाह अपने आप में अयोग्यता नहीं था। फैसले के पैराग्राफ 16,28 और 29 नीचे दिए गए हैं:*

... 16 इस प्रकार, विवाह एक संस्था/पवित्र संघ है जो न केवल कानूनी रूप से अनुमेय है, बल्कि पुरुष और महिला का बुनियादी नागरिक अधिकार भी है और विवाह के सबसे महत्वपूर्ण अपरिहार्य परिणामों में से एक पारस्परिक समर्थन है और विवाह एक ऐसी संस्था है जिसका बहुत कानूनी महत्व है और विवाह करने का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के अधिकार के साथ आवश्यक है क्योंकि जीवन के अधिकार में स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार शामिल है। ....

28. इस प्रकार, उपर्युक्त विश्लेषण से, यह पता चलता है कि विवाह की संस्था पुरुष और महिला का एक महत्वपूर्ण और बुनियादी नागरिक अधिकार है और विवाह अपने आप में राज्य सरकार की अयोग्यता और आक्षेपित नीति नहीं है, विवाहित पुत्रीके विचार को केवल विवाह के आधार पर अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त करने से प्रतिबंधित करना स्पष्ट रूप से मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 16 (2) में परिकल्पित संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन है, जो असंवैधानिक है।

29. उपर्युक्त चर्चा के निष्कर्ष और परिणाम के रूप में, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और परिणामस्वरूप अनुकंपा नियुक्ति दिनांक 10.06.2003 से संबंधित नीति के खंड 3 (1) (सी) और दिनांक 14.06.2013 की नीति के खंड 5 (सी) को अनुकंपा नियुक्ति से विवाहित पुत्रीको विचार के लिए बाहर रखने की सीमा तक उल्लंघनकारी और भेदभावपूर्ण होने के कारण शून्य और निष्क्रिय घोषित किया जाता है और परिणामस्वरूप (अनुलग्नक–पी/3) अनुकंपा नियुक्ति को अस्वीकार करते हुए आक्षेपित याचिकाकर्ता का मामला रद्द कर दिया जाता है। प्रतिवादियों/राज्य के लिए निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता के अनुकंपा के आधार पर नियुक्त होने के दावे पर कानून के अनुसार नए सिरे से अधिमानतः यह देखते हुए कि उसके पिता की मृत्यु 06.01.2011 को हुई थी और उसका आवेदन 28.09.2011 को अस्वीकार कर दिया गया था, आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति से पैंतालीस दिनों की अवधि के भीतर पुनर्विचार करे। खर्चे का कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

बेलाडीला बेरोजगार संघ बनाम नेशनल मीनरल कॉर्पोरेशन लि0 *के मामले में छततीसगढ उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने यह अवधारित किया है कि–*

"... यह विवादित नहीं है कि निगम राज्य का एक माध्यम है और संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत राज्य की परिभाषा के भीतर आता है और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में समानता के प्रावधान निगम के तहत रोजगार पर लागू होते हैं। इसलिए, एक महिला नागरिक को केवल लिंग के आधार पर निगम के तहत किसी भी रोजगार के लिए अयोग्य नहीं बनाया जा सकता है, लेकिन यदि ऐसा करने के लिए अन्य बाध्यकारी आधार हैं तो उसे निगम के तहत किसी विशेष रोजगार से बाहर रखा जा सकता है।

W-B- राज्य और अन्य बनाम पूर्णिमा दास और अन्य (2018 लैब आईसी 1522) के मामले में *कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक वृहद पीठ को इस प्रश्न का निर्णय लेने के लिए बुलाया गया था:*

"क्या राज्य सरकार के एक कर्मचारी की पुत्री को अनुकंपा नियुक्ति के क्षेत्र से बाहर करने का नीतिगत निर्णय, जो कर्मचारी की स्थायी अक्षमता से मृत्यु की तारीख को विवाहित है तथा वह पूरी तरह से ऐसे कर्मचारी की कमाई पर निर्भर है, संवैधानिक रूप से मान्य है?

खंड 2 (2) में यह प्रावधानित किया गया है कि–

"अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के प्रयोजन के लिए सरकारी कर्मचारी के आश्रित का अर्थ उस कर्मचारी की पत्नी/पति/पुत्र/अविवाहित पुत्री से होगा जो पूरी तरह से सरकारी कर्मचारी पर निर्भर है/थी।

इसके अतिरिक्त यह भी निर्धारित किया गया कि–

हम यह कहने के इच्छुक है कि अनुकंपा नियुक्ति की योजना परिवार के किसी भी सदस्य को इस आधार पर बहिष्कृत करना कि वह इतना निर्भर नहीं है, उचित होगा, लेकिन निश्चित रूप से लिंग या वैवाहिक स्थिति के आधार पर नहीं। यदि इसकी अनुमति दी जाती है, तो एक विवाहित पुत्री उस लाभ से वंचित रहेगी जिसका एक विवाहित पुत्र योजना के तहत हकदार होगा। एक विवाहित पुत्र और एक विवाहित पुत्री अलग–अलग वर्गों का गठन करते प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन जब अनुकंपा नियुक्ति का दावा शामिल होता है, तो उन्हें समान रूप से और समान रूप से माना जाना चाहिए यदि यह प्रदर्शित किया जाता है कि दोनों अपने जीवित रहने के लिए अपने मृत पिता/माँ (सरकारी कर्मचारी) की आय पर निर्भर थे। इसलिए, हमारे लिए वर्गीकरण को उचित के रूप में बनाए रखना मुश्किल है।

उक्त संदर्भ का उत्तर निम्नलिखित शब्दों में दिया जाता है:

''111 उक्त पैराग्राफ 6 में तैयार किए गए प्रश्न का हमारा उत्तर यह है कि पूर्णिमा, अर्पिता और काकली जैसी विवाहित बेटियों को अनुकंपा नियुक्ति के दायरे से पूरी तरह से बाहर करना, जिसका अर्थ है कि वे 'आश्रित' की परिभाषा के दायरे में नहीं आती हैं और आवेदन करने के लिए भी अयोग्य हैं, संवैधानिक रूप से मान्य नहीं है।

112. परिणाामस्वरूप, घातक प्रावधान अधिसूचना दिनांक 2 अप्रैल, 2008 (33 अर्पिता और काकली के मामलों को नियंत्रित करने) और 3 फरवरी, 2009 (पूर्णिमा के मामले को नियंत्रित करने) में 'पुत्री' से पहले 'अविवाहित' विशेषण को संविधान के उल्लंघन के रूप में निरस्त कर दिया गया है। हालांकि, यह कहने की जरूरत नहीं है कि निर्धारित फार्मूले (जो अपने आप में काफी सख्त है) के अनुसार यदि दावे पर आगे विचार किया जाता है। अनुकंपा नियुक्ति की आवश्यकता स्थापित होने के बाद, एक पुत्री जिसकी शादी सेवा में रहते हुए संबंधित सरकारी कर्मचारी की मृत्यु की तारीख को हुई है, उसे अपने पिता/माता (सरकारी कर्मचारी) की मृत्यु की तारीख पर पूरी तरह से निर्भर होने के अपने दावे में सफल होना चाहिए और मृतक के परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल करने के लिए सहमत होना चाहिए,

*कर्नाटक उच्च न्यायालय ने **(आर. जयम्मा वी. कर्नाटक विद्युत बोर्ड ने आई. एल. आर. 1992 कर 3416** के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:*

''10. यह भेदभाव, केवल इस आधार पर अनुकंपापूर्ण नियुक्ति से इनकार करना कि महिला विवाहित है, संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन है। यह उस समय की प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं है जब पुरुष और महिला सभी क्षेत्रों में समान शर्तों पर

प्रतिस्पर्धा करते हैं। विद्युत बोर्ड को अपने दिशानिर्देशों को संशोधित करना चाहिए और इस तरह की विसंगतियों को दूर करना चाहिए।

मद्रास उच्च न्यायालय ने ***आर. गोविंदम्मल बनाम प्रधान सचिव, समाज कल्याण और पौष्टिक भोजन कार्यक्रम विभाग और अन्य में 2015 (3) एलडब्ल्यू 756*** *में रिपोर्ट की:*

14. इसलिए, मेरा मानना है कि G-O-M- नं. 560 दिनांक 3–8–1977 विवाहित बेटियों को अनुकंपा नियुक्ति से वंचित करना, जबकि विवाहित पुत्रों को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान की जाती है, असंवैधानिक है। वास्तव में, राज्य संविधान के अनुच्छेद 15 (3) के अनुसार विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों के लिए कुछ लाभ प्रदान करने वाला कानून बना सकता है। लेकिन राज्य अनुकंपा नियुक्ति के मामले में महिलाओं के साथ विवाह के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता।

कृष्णवेणी बनाम कदमपराई विद्युत उत्पादन खंड, कोयम्बटूर जिले में 2013 (8) एमएलजे 684 में आर. गोविंदम्मल *में रिपोर्ट की गई, मद्रास उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह मत व्यक्त किया है कि यदि विवाह पुत्र के मामले में बाधा नहीं है, तो वही मापदंड एक पुत्री के मामले में भी लागू किया जाएगा।*

सौ स्वरा सचिन कुलकृणी बनाम अधीक्षण अभियंता, पुणे सिंचाई परियोजना मंडल, 2013 एससीसी ऑनलाइन बम 1549 *के मामले मे बॉम्बे उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी:*

"3.........दोनों शादीशुदा हैं। मृतक की पत्नी और बेटियों की मां के पास बुढ़ापे में आर्थिक और अन्य सहायता के लिए कोई और नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, राज्य का यह रुख कि विवाहित पुत्री पात्र नहीं होगी या अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार नहीं किया जा सकता है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 16 के जनादेश का उल्लंघन करता है। सार्वजनिक रोजगार में लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। यदि माँगा गया उद्देश्य आश्रितों में से किसी एक को रोजगार देकर वित्तीय संकट में परिवार की सहायता करना है, तो निर्विवाद रूप से इस मामले में पुत्री मृतक और उसकी शादी तक उसकी आय पर निर्भर थी। इसे आगे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

'3.... हम अनुकंपा नियुक्ति के मामलों में इस वर्गीकरण और भेदभाव के लिए कोई तर्क नहीं देखते हैं और विशेष रूप से जब राज्य के तहत रोजगार की मांग की जाती है।

देबाश्री चक्रवर्ती बनाम त्रिपुरा राज्य और अन्य 2020 (1) जी. एल. टी.

198 *के मामले में त्रिपुरा उच्च न्यायालय की एक वृहद पीठ ने उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों पर ध्यान दिया है, जिसमें विमला श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपर्युक्त) में* ***इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय और मंजुला बनाम कर्नाटक राज्य, 2005 (104) एफ. एल. आर. 271*** *में कर्नाटक उच्च न्यायालय का निर्णय शामिल है।*

"प्रश्न संख्या. 2 का उत्तर भी सकारात्मक दिया जाना चाहिए। 1974 के नियमों के नियम 2 (सी) और 1975 के विनियमों के विनियम 104 के तहत "परिवार" की परिभाषा में "एक विवाहित पुत्री' को शामिल न करना, जिससे उसे अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के अवसर से वंचित किया जाता है, भले ही वह मृत्यु के समय सरकारी कर्मचारी पर निर्भर थी, भेदभावपूर्ण है और भारत के संविधान के भाग III में अनुच्छेद 14,15 और 16 का उल्लंघन है। iii- हालाँकि, हम 1974 के नियमों के नियम 2 (सी) में "परिवार" की परिभाषा और 1975 के विनियमों के विनियम 104 के नीचे दिए गए नोट को पढ़ते हैं, ताकि इसे असंवैधानिक होने से बचाया जा सके। परिणामस्वरूप एक "विवाहित पुत्री" को 1974 के नियमों और 1975 के विनियमों के तहत अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से मृतक सरकारी कर्मचारी के "परिवार" की समावेशी परिभाषा के अंतर्गत भी रखा जाएगा। (जोर दिया गया).

18. उपर्युक्त निर्णयों, संवैधानिक सिद्धांतों के आलोक में, अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र आश्रितों में से एक के रूप में एक विवाहित बेटे को शामिल करते हुए अनुकंपा नियुक्ति पर विचार करने से एक विवाहित पुत्री का बहिष्कार पूरी तरह से लिंग भेदभाव पर आधारित है और कोई अन्य संवैधानिक रूप से अनुमेय आधार नहीं है। एक विवाहित पुत्री का बहिष्करण किसी भी तर्क पर आधारित नहीं है जो प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ उचित संबंध रखता है। इसलिए इस तरह का अनुचित बहिष्कार भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है जो केवल लिंग के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है।

19. चरधर दास (उपर्युक्त) के मामले में, जो मृतक सरकारी कर्मचारी के माता–पिता द्वारा दायर किया गया था, इस न्यायालय ने सरकार को उनके बेरोजगार दामाद के मामले पर अनुकंपा के लिए विचार करने का निर्देश दिया था क्योंकि नियम 16 (1) ने उपयुक्त प्राधिकारी को नियमों में इस हद तक ढील देने के लिए अधिकृत किया था कि वह किसी मामले को न्यायसंगत और न्यायसंगत तरीके से निपटाने के लिए आवश्यक समझे। लेकिन जैसा कि पहले चर्चा की गई है कि 2000 के नियमों में कोई समविषय का प्रावधान नहीं है।

श्रीमती केतकी मंजरी साहू बनाम उड़ीसा राज्य 1998 (II) ओएलआर

452 में, इस न्यायालय ने 1990 के नियमों के नियम 16 *का उल्लेख करते हुए इसी तरह के तथ्यों में राज्य सरकार को विवाहित पुत्री के मामले को अनुकंपा के आधार पर और इसे एक मिसाल बनाए बिना विचार करने का निर्देश दिया था। दुर्भाग्य से जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ है, जब इसे अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, तो अक्सर वे न्याय देने के लिए इसका प्रयोग नहीं करते हैं। अधिकरण द्वारा सरकार को चक्रधर दास (उपर्युक्त) के मामले में निर्णय के अनुसार 1990 के नियम के नियम–16 के तहत याचिकाकर्ता के मामले को एक विशेष मामले के रूप में विचार करने का निर्देश देने के बावजूद, आज तक याचिकाकर्ता को बहाल नहीं किया गया है।*

21. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 में न केवल महिलाओं को समानता, समान अवसर और कानून के समान संरक्षण का प्रावधान है, बल्कि 1979 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन में भी, जिसे भारतीय संसद द्वारा भी अनुमोदित किया गया है, उनके अधिकारों की रक्षा की गई है। यह लिंग के आधार पर किए गए किसी भी भेद, बहिष्कार या प्रतिबंध के खिलाफ बोलता है, जिसका प्रभाव या उद्देश्य राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं की समानता के आधार पर, उनकी वैवाहिक स्थिति की परवाह किए बिना, महिलाओं द्वारा मान्यता, उपयोगिता या क्रियाकलापों को बाधित या रद्द करना है।

22. ऊपर निर्दिष्ट निर्णय में न्यायमूर्ति सावित्री राथो द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान है कि बेटियां भी पुत्रों के बराबर हैं, जिन्हें भारतीय संसद ने 2005 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में संशोधन करके मान्यता दी है। यह भी देखा गया है कि भारत सरकार के साथ–साथ संसद ने भी बेटियों के अधिकारों के संबंध में प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया है। वर्ष 1856 में हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम लागू किया गया था, फिर 1929 में हिंदू उत्तराधिकार कानून पारित किया गया था, जिसमें तीन महिला उत्तराधिकारियों, बेटे की बेटी, पुत्री की पुत्री और बहन को विरासत में मिली संपत्ति पर अधिकार प्रदान किया गया था। हिंदू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम, 1937 में, पहली बार, विधवा हिंदू महिलाओं के अधिकारों को इस अधिनियम द्वारा केंद्रीय विधानसभा द्वारा मान्यता दी गई थी। फिर, हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के पारित होने से, संसद ने अपने पिता की स्व–अर्जित संपत्ति पर पुत्री के पूर्ण अधिकार को मान्यता दी। हालाँकि, हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के आधार पर, हिंदू बेटियों को बेटे के समान स्थान पर रखा

जाता है। उन्हें पुत्रों के बराबर सह–भागीदार का अधिकार दिया गया था। इस प्रकार, उत्तराधिकार के हिंदू कानून द्वारा निर्देशित महिलाओं के अधिकारों को मान्यता देते हुए भारत की संसद द्वारा प्रगतिशील कानून बनाया गया है।

23. उत्तरदाताओं/ प्रतिवादी नं 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता के द्वारा **रामजी दीक्षित और अन्य बनाम भृगुनाथ और अन्य ए. आई. आर. 1965 (इलाहाबाद) पृष्ठ 1** के मामले में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संक्रमणीय अधिकार उन सभी व्यक्तियों पर लागू होते हैं जिनके पास संक्रमणीय अधिकार हैं, इस बात की परवाह किए बिना कि उन्होंने उन्हें कैसे प्राप्त किया या जिनसे उन्हें विरासत में मिला। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एम. सी. देसाई द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के अनुसार, विधानमंडल ने पुत्र को उसके पिता से विरासत में मिले संक्रमणीय अधिकारों की प्रकृति और हिंदू विधवा को उसके पति से विरासत में मिले अधिकारों और मुस्लिम विधवा को उसके पति से विरासत में मिले अधिकारों के बीच कोई अंतर नहीं किया है। परिणामतः पूर्ण पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक भूमिधर का हित जो एक विधवा को पति से विरासत में मिला है, उतना ही हस्तांतरणीय है जितना कि एक बेटे को उसके पिता से विरासत में मिला है। फैसले को पढ़ने से पता चलता है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मामले पर प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया है और एक विधवा के पक्ष में अधिकारों की व्याख्या की है। इसके अलावा, उक्त मामले का तथ्य इस मामले के तथ्यों से अलग है, और इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि संपत्ति पुत्री को विरासत में नहीं मिल सकती है।

24. दूसरा विधि विनिश्चय जिस पर उत्तरदाताओं/ प्रतिवादी 1 और 2 के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है। प्रबंध समिति, टी0जे0पी0 आर्य कन्या इंटर कॉलेज, इटावा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1976 ए0आई0आर0 इलाहाबाद पृष्ठ 488. के मामले में U-P इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम की धारा 16(अ)6, 16ब और 16स के अधिकार को चुनौती दी गई थी। इस मामले का वर्तमान मामले से कोई लेना–देना नहीं है, क्योंकि उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले से पूरी तरह से अलग हैं। प्रतिवादी नं 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा मामले पर गलत भरोसा किया गया।

25. उत्तरदाताआ/प्रतिवादी नं0 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा बताये गये कानून पर हमने एआईआर 1976 के नामिका सूची का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया। पक्ष के नाम (महेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के अनुसार, एआईआर 1976 में पृष्ठ 59 पर महिंद्रा सिंह का केवल एक मामला दर्ज

किया गया है। यह मामला U-P- सहकारी समिति अधिनियम के चुनाव से संबंधित है। विशेष रूप से इसकी धारा 29 (4), प्रबंधन समिति के चुनाव की व्याख्या के संबंध में है। इसलिए इस मामले के तथ्य भी एक अलग मुद्दे पर हैं।

26. विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा और अन्य (2020) 9 एस. सी. सी. 1 के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अनेक निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि संशोधन अधिनियम, 2005, संशोधन की तारीख अर्थात 09.09.2005 से प्रभावी किसी भी पुत्री पर लागू होता है, चाहे वह उक्त संशोधन से पहले पैदा हुई हो या नहीं। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 संशोधन से पहले या बाद में पैदा हुई पुत्री को समान अधिकार और देनदारियों के साथ बेटे के समान ही सहदायिक का दर्जा प्रदान करती है। प्रतिस्थापित धारा 6 के तहत अधिकारों का दावा संशोधन की तारीख से प्रभावी संशोधन से पहले पैदा हुई पुत्री द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विशेष विधि, जो हिंदुओं के बीच उत्तराधिकार का मार्गदर्शन करती है, अपने पिता की संपत्ति में पुत्री के उत्तराधिकार का उपबंध करती है चाहे उसकी वैवाहिक स्थिति कुछ भी हो।

27. यह न्यायालय उजालआर को जमींदारी के उन्मूलन और भूमि सुधारों से संबंधित एक सामान्य कानून मानने के लिए इच्छुक है। जहाँ तक संपत्ति की विरासत का संबंध है, यह तत्कालीन उत्तर प्रदेश राज्य के सभी नागरिकों पर लागू होता है और इसलिए, इसे एक सामान्य कानून के रूप में माना जाना चाहिए, जबकि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम केवल हिंदुओं पर लागू होता है, और इसलिए, यह एक विशेष कानून है। यह एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि सामान्य कानून पर विशेष कानून को प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए, भूमि का विशेष कानून वादी/अपीलार्थी को अपने दिवंगत पिता श्री हुकुम सिंह की संपत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार देगा।

28. इस मामले का एक अन्य पहलू श्री सनप्रीत सिंह अजमानी द्वारा उठाया गया, जो उत्तरदाताओं/ प्रतिवादियों 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता है, प्रतिवादियों का कहना है कि न्यायालय यह मत नहीं रख सकता कि उजालार की धारा 171 के उपबंध हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 की धारा 6 के उपबंधों के विपरीत हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उजालार को भारत के संविधान की नौवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया है। हालांकि, भारत के संविधान की नौवीं अनुसूची के संदर्भ से पता चलता है कि हालांकि उजालआर को उसमें शामिल किया गया है, उजालआर (संशोधन) अधिनियम 2005, जिसे ऊपर संदर्भित किया गया है, को उसमें शामिल नहीं किया गया है,

और इसलिए, इस तरह के प्रावधान की संवैधानिक वैधता को एक उपयुक्त रिट आवेदन में उठाया जा सकता है।

29. चूंकि इस न्यायालय की राय है कि उजालार अधिनियम की धारा 171 के तहत प्रदान किया गया उत्तराधिकार का आदेश प्रतिगामी प्रकृति का है, इसलिए न्यायालय को इसे स्वीकार नहीं करना चाहिए और एक प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, जो एक महिला हिंदू के अधिकारों की मान्यता के प्रति संवेदनशील हो।

30. मामले के उस दृष्टिकोण में, इस न्यायालय की राय है कि, प्रथम दृष्टया, वादी अपीलार्थी का अपने दिवंगत पिता हुकुम सिंह की संपत्ति पर हित है। तदनुसार, इस मुद्दे का निर्णय अपीलार्थी के पक्ष में किया जाता है।

31. दलपत कुमार बनाम प्रहलाद सिंह, (1992) 1 एस. सी. सी. 719 के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने, निषेधाज्ञा प्रदान करने या अस्वीकार करने के लिए आवेदन से उत्पन्न अपील का निर्णय करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को, निषेधाज्ञा प्रदान करते या अस्वीकार करते समय, पक्षकारों को होने वाली पर्याप्त असुविधा या क्षति की मात्रा का पता लगाने के लिए ठोस न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए, यदि निषेधाज्ञा अस्वीकार कर दी जाती है, और इसकी तुलना उस राशि से करनी चाहिए जो निषेधाज्ञा प्रदान किए जाने पर दूसरे पक्ष को होने की संभावना है। यदि प्रतिस्पर्धी संभावनाओं या क्षति की संभावना की संभावनाओं को तौलने पर यदि न्यायालय मानता है कि लंबित वाद की विषय वस्तु की यथास्थिति बनाए रखी जानी चाहिए, और एक निषेधाज्ञा जारी की जानी चाहिए।

32. इस प्रकार, इस सिद्धांत को वर्तमान मामले में लागू करते हुए, यह देखा जाता है कि यदि निषेधाज्ञा को अस्वीकार कर दिया जाता है, तो प्रतिवादी फ्लैटों के निर्माण के साथ आगे बढ़ेगा, जिसे विभिन्न व्यक्तियों को बेचा जाएगा और वे इसका कब्जा ले लेंगे और उसमें रहना शुरू कर देंगे, और इस तरह, यह अपीलार्थी को पर्याप्त नुकसान पहुंचाएगा और इन सभी व्यक्तियों को इसके बाद के किसी भी मालिक को फंसाना लगभग असंभव होगा, जिन्हें फ्लैट आवंटित किए जाएंगे और ऐसे मामलों में विस्तार करने के लिए पर्याप्त प्रयास और समय की आवश्यकता होगी जिससे वादी को बहुत कठिनाइयाँ होंगी।

33. यह भी हमारा अनुभव है कि यदि संपत्ति की प्रकृति को पर्याप्त रूप से बदलने की अनुमति दी जाती है और इस तरह कई अन्य व्यक्तियों के हितों को इसमें शामिल किया जाता है, तो मुकदमेबाजी की एक लंबी प्रक्रिया शुरू हो जाएगी, जो न्याय की विफलता का कारण बन सकती है। इसके विपरीत, यदि

विषय वस्तु की प्रकृति को बनाए रखा जाता है और आज की स्थिति को बनाए रखा जाता है, तो पक्षकारों द्वारा दिए गए साक्ष्य को तौलने के बाद अंतिम विश्लेषण पर वादी/अपीलार्थी को प्रभावी राहत दी जा सकती है, और इससे प्रतिवादियों को कोई नुकसान नहीं होगा। प्रतिवादी को होने वाला एकमात्र नुकसान शायद राजस्व का नुकसान है, जिसकी भरपाई हमेशा मुकदमे के अंतिम निपटान के चरण में की जा सकती है।

34. हालाँकि, इसके विपरीत, यदि निर्माण को जारी रखने की अनुमति दी जाती है, जिससे कुछ तीसरे पक्षों का हित पैदा होता है, तो न्यायालय के लिए पक्षों के साथ प्रभावी न्याय करना निश्चित रूप से असंभव होगा। इसके अलावा, सह–स्वामी के खिलाफ निषेधाज्ञा दी जा सकती है, यदि यह आरोप लगाया जाता है कि सह–स्वामी आश्रित संपत्ति की प्रकृति को स्थायी रूप से बदल रहा है। समता के सिद्धांत के आधार पर, इस न्यायालय की राय है कि सुविधा का संतुलन वादी/अपीलार्थी के पक्ष में निषेधाज्ञा देकर, फिर निषेधाज्ञा देने से इनकार करके निहित है।

35. यही सिद्धांत अपूरणीय क्षति के प्रश्न पर भी लागू होता है। न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप न करने के परिणामस्वरूप अनुतोष मांगने वाले पक्ष को अपूरणीय क्षति होगी, और यह कि पक्षकार के लिए निषेधाज्ञा देने के लिए एक के अलावा कोई अन्य उपाय उपलब्ध नहीं है, और उसे अनुमानित क्षति या विस्थापन के परिणामों से सुरक्षा की आवश्यकता है। जैसा कि दलपत कुमार (उपर्युक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, अपूरणीय क्षति का अर्थ यह नहीं है कि क्षति की भरपाई की कोई भौतिक संभावना नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसका अर्थ केवल यह है कि एक भौतिक क्षति होनी चाहिए, अर्थात् जिसकी क्षति के रूप में पर्याप्त रूप से क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती है। इस मामले में, एक पुत्री अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति पर अपना अधिकार जता रही है। इससे न केवल आर्थिक पहलू जुड़ा हुआ है, बल्कि इस तरह के अनुप्रयोग के साथ एक भावनात्मक अंश भी जुड़ा हुआ है। एक पुत्री को अपने पिता की संपत्ति विरासत में मिलने पर निश्चित रूप से अच्छा लगेगा, विशेष रूप से, जब भारतीय संसद ने एक पुत्री के अधिकारों को मान्यता देते हुए एक प्रगतिशील कानून बनाया है। इसके अलावा, यदि प्रतिवादी को संपत्ति की मूल प्रकृति को बदलने की अनुमति दी जाती है और इस तरह कई अन्य व्यक्तियों का हित पैदा होता है, जो वादी/अपीलार्थी या प्रतिवादी से संबंधित नहीं हैं, तो नुकसान की कोई राशि ऐसी क्षति की भरपाई नहीं कर सकती है।

36. मामले के उस दृष्टिकोण में, इस न्यायालय की राय है कि वादी/अपीलार्थी को होने वाली क्षति ''अपूरणीय क्षति'' की शैली की होगी, और इसलिए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस मामले में सभी तत्व पूरे हो गए हैं।

37. प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वादी/अपीलार्थी पुलिस के समक्ष पारिवारिक निपटान जैसे कुछ तथ्यों को दबाकर अदालत में आया है, जिसे वादी/अपीलार्थी द्वारा शिकायत दर्ज करने के बाद निपटाया गया था।

38. हमारी सुविचारित राय में, वादी/अपीलार्थी पहले ही अपने आवेदन में कुछ अभिवचन कर चुकी है कि उसने कई प्राधिकरणों के समक्ष कई अभ्यावेदन किए थे, लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकला, और इसलिए, उसने अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर किया। मामले के उस दृष्टिकोण में, हमारी राय है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि वादी/अपीलार्थी भौतिक तथ्यों को दबाकर न्यायालय में आया है। वास्तव में, वादी/अपीलार्थी ने किसी भी पारिवारिक समझौते के निष्पादन पर विवाद किया है। इसके अलावा, उसके अधिकार के कथित त्याग को किसी भी पंजीकृत दस्तावेज के माध्यम से निष्पादित नहीं किया गया है। इसके अलावा, संलग्नक सं 2 और 3 प्रकीर्णवाद के लिए उत्तरदाताओं द्वारा दायर आवेदन/प्रतिवादी शपथ पत्र हैं। यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक हलफनामा पारिवारिक समझौते का स्थान नहीं ले सकता है। सह–शेयरधारकों के बीच पहले हुए समझौते के संबंध में पारिवारिक समझौता किया जाना है। इसके अलावा, यह हलफनामा एक आपराधिक मामले में एस. एच. ओ., पुलिस स्टेशन–काठगोदाम के समक्ष दायर किया गया प्रतीत होता है। एक शपथपत्र के निष्पादन से, एक अधिकार को समाप्त नहीं किया जा सकता है और न ही एक अधिकार बनाया जा सकता है। अतः इस न्यायालय की राय है कि तथ्य का कोई गंभीर दमन नहीं है जिसका अपीलार्थी के मामले पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ना चाहिए।

39. प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि, इस बीच, लगभग 24 व्यक्तियों को फ्लैट आवंटित किए गए हैं, और जब तक उनकी बात नहीं सुनी जाती है, तब तक निषेधाज्ञा पारित नहीं की जानी चाहिए। हालांकि, हमने प्रतिवादियों द्वारा 01.12.2021 को दायर आवेदन को ध्यान से पढ़ा है। ऐसे व्यक्तियों या यहां तक कि बैंक, जिसने पहले ही उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों को अग्रिम राशि प्रदान कर दी है, के विवरण का वर्णन नहीं किया गया है, इसलिए यह वादी/अपीलार्थी की जानकारी में उन व्यक्तियों के विवरण के बारे में नहीं होना चाहिए, जो विचाराधीन संपत्ति में कुछ

हित का दावा कर सकते हैं। यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि केवल एक गैर/पक्षकार के लिए, दीवानी कार्यवाही को खारिज नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में, विभिन्न उच्च न्यायालयों के कई निर्णय हैं जिनमें कहा गया है कि यदि प्रतिवादी गैर/पक्षकार की याचिका लेता है और उनकी अनुपस्थिति में, किसी मामले का प्रभावी ढंग से निर्णय नहीं लिया जा सकता है, या एक आदेश पारित करने से पहले, उन व्यक्तियों को सुना जाना चाहिए तो कानून प्रतिवादी से उन व्यक्तियों का वर्णन करने की अपेक्षा करता है जिनकी संपत्ति पर रुचि है, ताकि वादी को उन्हें दीवानी कार्यवाही में पक्षकार बनाने का अवसर मिले। आवश्यक पक्ष के गैर–संयोजन के प्रश्न पर आवेदन को खारिज करने का उपयोग केवल तभी किया जाता है जब प्रतिवादी उचित दस्तावेज दाखिल करके या पक्षों के नाम और उनके विवरण के बारे में लिखित बयान में विशिष्ट अभिकथन करके अदालत के समक्ष खुलासा करता है, जिसे किसी भी आदेश के पारित होने से पहले शामिल किया जाना चाहिए और सुना जाना चाहिए।

40. हमें पक्षकारों का ऐसा कोई विवरण उत्तरदाताओं–प्रतिवादियों द्वारा हमारे समक्ष दायर दस्तावेजों में नहीं मिलता है। प्रतिवादी नं 1 ने विद्वान सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग), हल्द्वानी के समक्ष अपना लिखित बयान भी दाखिल किया है। वहाँ भी प्रतिवादी/प्रतिवादी नं 1 ने ऐसा कोई विशिष्ट अभिवचन नहीं लिया है कि किसी आदेश को पारित करने से पहले कुछ व्यक्तियों की सुनवाई की जानी चाहिए, और इस स्तर पर, प्रतिवादी यह अभिवचन नहीं ले सकते हैं कि बैंक, जिसका लिखित कथन में नाम नहीं है, या कोई व्यक्ति जिसे कथित रूप से फ्लैटों/अपार्टमेंटों के साथ आवंटित किया गया है, को निषेधाज्ञा का आदेश पारित करने से पहले सुना जाना आवश्यक है। प्रतिवादियों द्वारा दायर लिखित बयान में इस संबंध में विशिष्ट याचिका का अभाव है। इस न्यायालय की राय है कि अपार्टमेंट के आवंटन के लिए आवेदन करने वाले पक्षों को सुनवाई के अवसर के संबंध में उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क में कोई आधार नहीं है। इसलिए, यह न्यायालय इस तरह के तर्क को अधिक महत्व देने के लिए इच्छुक नहीं है।

41. मामले के उस दृष्टिकोण में, इस न्यायालय की राय है कि वादी/अपीलार्थी के पक्ष में प्रथम दृष्टया मामला है, जिस पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। निषेधाज्ञा जारी करने और फिर उसे अस्वीकार करने के लिए सुविधा का संतुलन उसके पक्ष में है। तीसरा, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि यदि निषेधाज्ञा नहीं दी जाती है तो वादी/अपीलार्थी को अपूरणीय क्षति

होगी और ऐसी क्षति की भरपाई किसी भी लागत या क्षतिपूर्ति से नहीं की जा सकती है।

42. मामले के उस दृष्टिकोण में, इस न्यायालय का यह भी विचार है कि वाद के मुद्दों के प्रभावी निर्णय के लिए विषय वस्तु की प्रकृति और चरित्र को संरक्षित किया जाना चाहिए। मामले के उस दृष्टिकोण में, अपील की अनुमति है। सिविल न्यायाधीश, (वरिष्ठ प्रभाग), हल्द्वानी द्वारा पारित दिनांक 13.09.2021 का आदेश रद्द कर दिया गया है। उत्तरदाता/प्रतिवादियों को वाद संपत्ति पर और निर्माण करने से प्रतिबंधित किया जाता है। खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा। विचारण न्यायालय के अभिलेखों को तुरंत वापस भेजा जाए।

(संजय कुमार मिश्रा, जे।)

(नियमों के अनुसार इस निर्णय की तत्काल प्रमाणित प्रति प्रदान करें)